International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 4; Issue 5; September 2018; Page No. 44-47

मृदुला गर्ग : उपन्यासों की दुनिया व स्त्री अस्मिता का सच

मीनू साकेत
शोधार्थी हिन्दी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
बीसवीं सदी में उपन्यास का पारम्परिक स्वरूप परिवर्तित हुआ है। आज शिल्प को कभी कथ्य के समान ही महत्व दिया जाने लगा है और शिल्प की चर्चा के बिना उपन्यास की समीक्षा अधूरी मानी जाने लगी है। आधुनिक उपन्यासकारों के लिए उपन्यास केवल मानव–जीवन का चित्र ही नहीं बल्कि एक कला–रूप भी है। उनके लिए 'क्या कहना है' यही नहीं बल्कि 'कैसे कहना है' यह भी उतना ही महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसीलिए आज का आलोचक भी उपन्यास को एक कलाकृति के रूप में परखना चाहता है, उसकी विविध रचना–शैलियों, भाषिक उपकरणों–बिम्ब, प्रतीक, संकेत आदि को सामने रखते हुए वह उपन्यास की शिल्पगत समीक्षा करता है।

मूल शब्द : मृदुला गर्ग, उपन्यास, दुनिया, स्त्री अस्मिता।

प्रस्तावना

आज के हिन्दी उपन्यासों में भाषा के नये–नये तेवर, रूप–रंग, नज़र आ रहे हैं। वर्णन के स्तर से ऊपर उठकर भाषा व्यंजना क्षमता से परिपूर्ण हो रही है। भाषा के समान ही शैली के क्षेत्र में भी नए–नए प्रयोग उपन्याकारों द्वारा हो रहे हैं। कथानक के अनुरूप रचना शैलियों का प्रयोग करते हुए लेखक अपनी 'शैली के प्रति सजगता' का भी परिचय दे रहे हैं। एक आधुनिक उपन्यास लेखिका के रूप में मृदुला गर्ग ने भी भाषा और शैली के प्रति जागरुकता दिखाकर अपने उपन्यासों को दोनों स्तरों पर उच्च आयाम प्रदान करने की कोशिश की है। अपने औपन्यासिक कथ्य के अनुरूप ही भाषा–शैली का चयन करके लेखिका ने अपने अभिव्यक्ति सामर्थ्य को प्रकट किया है।

आठवें दशक की जानी–मानी लेखिका मृदुला गर्ग के उपन्यास भाषिक वैशिष्ट्य के कारण अपनी अलग पहचान लिए हुए हैं। उनके प्रमुखतः सभी उपन्यासों में भाषा के नये–नये रूप और प्रयोग, भाषा में काव्य भाषा के उपकरणों–प्रतीक, बिम्ब, संकेत, अलंकार आदि का प्रयोग हुआ है, फलस्वरूप उनकी औपन्यासिक भाषा में कसावट, तराश, सूक्ष्मता और सम्प्रेषणीयता के दर्शन होते हैं। मृदुला गर्ग अपनी कहानियों की अपेक्षा उपन्यासों में भाषा–प्रयोग की दृष्टि से विशेष सतर्क लगती हैं और भाषा तथा शैली के प्रति इसी सजगता के कारण उनके उपन्यासों में 'शिल्पगत चमत्कार' भी अनुभव होता है। विशेषकर 'चित्तकोबरा' और 'अनित्य' में। उनके उपन्यासों में भाषा की उत्कृष्टता, सम्प्रेषणीयता, अभिव्यक्ति–सामर्थ्य के कारण जो उनका कथ्य है, वह उनकी भाषा में बोल पड़ा है। मृदुला जी का चाहे 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास हो या 'कठगुलाब' उक्त उपन्यासों की सराहना उनके भाषापक्ष को लेकर काफी हुई है। 'उसके हिस्से की धूप' की भाषिक–सामर्थ्य की समीक्षा करते हुए गोविन्द रजनीश कहते हैं–"लेखिका के पास अपने अनुभवों को व्यक्त करने के लिए सार्थक व संयत भाषा है, जिसमें सादगी और रवानगी है। लक्षणा और व्यंजना के सायास चमत्कारी प्रयोगों की अपेक्षा सीधी भाषा में अनुभवों की जटिलता को व्यक्त करने और वर्णन करने का दक्षतापूर्ण सामर्थ्य है।"[1]

मृदुला गर्ग की भाषा शब्द भण्डार से सम्पन्न, सूक्तियों से सजी, चित्रोपमता से युक्त और आलंकारिकता से पूर्ण है। अपने भावों को पाठकों तक तीव्रतर रूप में सम्प्रेषित करने की क्षमता उनकी भाषा में है। मृदुला गर्ग के उपन्यासों की भाषा को बिम्ब, प्रतीक एवं अप्रस्तुत विधान के सौन्दर्य ने भी सजाया है।

मृदुला गर्ग के 'उसके हिस्से की धूप', 'चित्तकोबरा' तथा 'कठगुलाब' उपन्यासों के शीर्षक प्रतीकात्मक हैं। 'उसके हिस्से की धूप' शीर्षक में धूप का प्रतीकार्थ उसके हिस्से का 'प्यार' है जो उज्ज्वल है, प्रकाशमान है तथा छिप नहीं सकता भले ही कुछ काल के लिए लुप्त हो सकता है। मनीषा मधुकर के हिस्से की धूप में भी सिंकना चाहती है और उस धूप (या प्यार) से आनंदित होकर जितेन की छाँव को भी कटु नहीं बनाना चाहती। पति और प्रेमी की बीच आवश्यक धूप और छाँव का समझौता उसने कर लिया है। अतः उपन्यास का शीर्षक कथावस्तु से मेल खाने वाला है।

"चित्तकोबरा' उपन्यास का शीर्षक दो शब्दों के योग से बना हुआ तथा प्रतीकात्मक है। लेखिका ने संस्कृत शब्द चित्त (स्वभाव) को अंग्रेजी के 'कोबरा' (सांप) से जोड़ा है। दो शब्दों का समन्वय करके लेखिका ने अपनी सूझबूझ तथा बौद्धिकता का परिचय दिया है। शैलेश्वर सतीप्रसाद चित्तकोबरा की प्रतीकात्मकता को इस रूप में स्पष्ट करते हैं–"मनु का चित्त उसके अस्तित्व को सर्वदा डंसता रहता है, मनु और रिचर्ड सांप की तरह एक दूसरे के प्रेम में तिरोहित हैं, नाग की रैखिक काया, समय, जीवन और कथाप्रवाह का प्रतीक है।"[2]

'कठगुलाब' शीर्षक के अनेक प्रतीकार्थ उपन्यास में व्यंजित होते हैं। "कठगुलाब' शीर्षक का आदि से अन्त तक प्रतीकात्मक प्रयोग करके यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि जिन्दगी की राहें आसान नहीं हैं और उसमें सफलता के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहना पड़ता है। इसी कारण उपन्यास में जितने भी प्रमुख पात्र हैं वे सभी मानों किसी कठगुलाब को उगाने के लिए प्रयत्नशील हैं और उसी के लिए अपनी पूरी शक्ति भी दाँव पर लगा देते हैं।"[3]

उपन्यास के विपिन खण्ड में स्मिता और विपिन के संवादों द्वारा भी 'कठगुलाब' की प्रतीकात्मकता स्पष्ट होती है। जब स्मिता कहती है–"चालीस साल बाद। कुछ ठहरा नहीं रहता, पर कुछ बदलता भी तो नहीं। मैं समझती हूँ। मि. मजूमदार, बूढ़ा सिर्फ शरीर होता है। मन तो कठगुलाब की तरह है सदाबहार। पर .... कितना नष्ट प्राय।

सूखता नहीं बुढ़ापा, पर हाथ लगने पर टूटकर बिखर जाने को तैयार रहता है।"[4] अर्थात् स्मिता की दृष्टि में 'कठगुलाब' सदाबहारमन का प्रतीक है।

विपिन के लिए 'कठगुलाब' सहजता, सरलता और प्रकृति का प्रतीक है। वह सोचता है–"इतनी (कठगुलाब की जितनी) सहज, सरल सादा कब हो पायी है जिन्दगी? या प्रकृति?"[5] अर्थात् कठगुलाब जिन्दगी का भी प्रतीक बन गया है। 'कठगुलाब' का एक अन्य प्रतीकार्थ विपिन की दृष्टि में इस प्रकार है–कठगुलाब का बीज मन में चिरकाल से संचित साध है जिसके फलने–फूलने के लिए उपयुक्त जमीन चाहिए। नीरजा की बंजर और बांझ कोख या भूमि के कारण विपिन की 'संतान की साध' पूरी नहीं हो पाई।

'कठगुलाब' का एक और प्रतीकार्थ उपन्यास के उन सभी स्त्री पात्रों पर खरा उतरता है जिनका लगातार परिस्थितियों से संघर्ष करते–करते बाह्यकलेवर काठ का भले ही हो गया हो पर अपने अंतरंग में 'कठगुलाब' के समान ही पानी की बूंदे पड़ते ही (स्नेह सिंचित होते ही) भक्क से खिल उठने, प्रस्फुटित होने तथा मुस्कान बिखरने की शक्ति भी जिनके पास है। एक अन्य प्रतीक अर्थ भी 'कठगुलाब' के शीर्षक से देखा गया है, जो 'बांझपन' का अर्थ है। स्त्री जीवन का बांझपन। स्त्री की भावभूमि के बंजर और ऊसर होते जाने की स्थिति को बांझपन का लक्षण मानते हुए यह प्रतीकात्मकता उपन्यास पर आरोपित की गई है। स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा, नीरजा का बांझपन, उनकी जीवन की व्यर्थता और लाचारी को प्रकट करता है। 'कठगुलाब' की प्रतीकात्मकता को बांझपन या स्त्री जीवन की लाचारी से जोड़कर लेखिका ने कुछ गड़बड़ कर दी है। एक आलोचक द्वारा 'कठगुलाब' की इस अस्पष्ट तथा असफल प्रतीकात्मकता के सम्बन्ध में कहा गया है कि "याने बांझत्व को ही प्रतीक बनाया जाता और वास्तविक रूप में बांझ बनाने के चक्कर में न पड़ा जाता तो 'कठगुलाब' के शीर्षक व प्रतीकत्व में अटकने के बदले कुछ और बृहत्तर आयाम खोले जा सकते थे। इस स्तर पर उपन्यास का प्राण यह प्रतीक 'बाड़ ही के खेत खाने' की तरह पूरी कृति पर पहाड़–सा सिर्फ छा ही नहीं गया है, सब कुछ को दबा ही देता है। क्षतिग्रस्त करके रचनात्मकता को एक हद तक कुंद कर देता है।"[6] अर्थात् बांझपन के अर्थ में यहाँ प्रतीकात्मकता कृति के लिए बाधक सिद्ध हो रही है। प्रतीक के जाल में पाठक उलझता जाता है।

मृदुलाजी के उपन्यासों में शीर्षक की प्रतीकात्मकता के साथ ही पात्रों या चरित्रों की प्रतीकात्मकता भी देखी जा सकती है। उनके केवल 'अनित्य' उपन्यास में ही पात्र प्रतीक बनकर उभरे हैं–लेखिका ने 'अनित्य' के पात्रों के नामकरण में प्रतीकात्मकता का प्रयोग किया है–अविजित गांधीवादी कांग्रेसी का प्रतीक, अनित्य दुर्द्धर्ष क्रान्तिकारी भगतसिंह का प्रतीक, अविजित की पत्नी श्यामा (काली), भारत की गांधीवादी राजनीति का प्रतीक, उसका मतिमंद बेटा सुधांशु–अर्थहीन लुंजपुंज स्वराज्य का प्रतीक बनकर उपन्यास में उभरे हैं, जो प्रतीक और चरित्र दोनों के रूप में अपनी दोहरी भूमिका निभाते हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में दाम्पत्य जीवन में विघटन की प्रक्रिया प्रबल और उग्र होती जा रही है। आज विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और भावात्मक कारणों से पति–पत्नी सम्बन्धों के बीच प्रेम, आत्मीयता का भाव समाप्त होता जा रहा है। दाम्पत्य जीवन में मधुरता, रोमांस, प्रेम और विश्वास के होने पर वह सफल होता है अन्यथा दाम्पत्य अनेक प्रकार की विकृतियों और कुण्ठाओं का शिकार हो जाता है। आज पति–पत्नी के दाम्पत्य सम्बन्धों में जो अलगाव, शुष्कता निर्माण हुई है, उसके कई कारणों की मीमांसा डॉ. पुष्पपाल सिंह ने इस रूप में की है–"कहीं यह अलगाव असंतोष और सम्बन्धों की दरकन किसी तीसरी उपस्थिति के कारण है तो कहीं के दूसरे पर व्यर्थ के शक से, कहीं पति को सम्पूर्णता में पाने की ललक को लेकर है तो कहीं सामान्य स्त्री के स्तर पर जीवन जीकर पति का सम्पूर्ण प्रेम प्राप्त करने की उत्कट कामना से, कहीं यह काम–सम्बन्धों की अतृप्ति के कारण है तो कहीं दाम्पत्य के एक रूटीन में बंध जाने और चौके चूल्हे तथा बच्चों की किच–किच में फंसे रहकर जीवन के नीरस हो जाने से, कहीं पति द्वारा न समझे जाने की अनाम और अकूत पीड़ा है तो कहीं अर्थतंत्र के विषधर की फुंकार से जीवन पर निराशा की कालिमा के मंडराने से उपजा असंतोष है।"[7] लेखिका मृदुला गर्ग ने भी दाम्पत्य की असफलता के कारणों के बारे में कहा है–"असफल दाम्पत्य की कहानियों में मूल समस्याएँ पति का 'खल' स्वरूप, उसमें संवेदना की कमी, पति–पत्नी के बीच अहम की लड़ाई, यौन–असंतुष्टि व प्रेमी का आगमन रही है।"[8] अतः इन विभिन्न कारणों से वैवाहिक सम्बन्धों में निर्माण होने वाली टूटन, दरकन और तुर्शी को आज कहानी का विषय बनाया गया है। दाम्पत्य में दरार निर्माण होने पर परिवार की अर्थवत्ता और सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह लगता है, परिवार टूट जाते हैं। आज वह युग नहीं रहा कि एक बार यदि सम्बन्धों में बंध गए तो कैसे भी क्यों न हो उसका निर्वाह करते रहो। आज पति–पत्नी में बात–बात पर अनबन के परिणामस्वरूप विवाह–विच्छेद की स्थिति निर्माण होना स्वाभाविक है। आज के स्वतन्त्र विचारों वाले शिक्षित पति–पत्नी आसानी से तलाक ले लेते हैं। न रोना धोना, न दोषारोपण, न भावनात्मक तकलीफ का अनुभव। तलाक या विवाह–विच्छेद के अलावा दाम्पत्येत्तर सम्बन्धों की स्थिति भी, जो विवाह और तलाक के बीच की स्थिति है, आज प्रमुखतः देखी जा सकती है। आधुनिक युग में दाम्पत्य में दरार का प्रमुख कारण विवाहेत्तर सम्बन्ध भी है और अस्वस्थ दाम्पत्य–जीवन भी पति–पत्नी को 'अन्य तीसरे' के प्रति प्रवृत्त करता है। विवाहेत्तर सम्बन्धों से भी आज के पति–पत्नी कतराते नहीं।

लेखिका मृदुला गर्ग ने अपनी कहानियों में दाम्पत्य के इन धूपछांही रंगों को चित्रित करते हुए कहानी को एक नई समृद्धि प्रदान की है। स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का चित्रण उनकी कहानियों का केन्द्रीय विषय एवं 'स्थायी शरण्य' है। इस सन्दर्भ में लेखक दिनेश द्विवेदी के कथन को यहीं उद्धृत किया जा सकता है–"पति–पत्नी के बीच पसरे हुए दाम्पत्य के जलते, धुंधाते, बनते–बिगड़ते आपसी रिश्तों के तेवरों पर यों तो बहुत कुछ लिखा जा चुका है और लिखा जा रहा है मगर इन बारीक सम्बन्धों की पेचीदगियों से अलग हटकर यदि किसी ने बेलाग और बेलौस तरीके से लिखा है तो वह है–मृदुला गर्ग।"[9] मृदुला जी ने विशेष रूप से असफल दाम्पत्य की कहानियाँ लिखी है।

मृदुला गर्ग ने जहाँ पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित स्वच्छन्द, उन्मुक्त स्वभाव वाले स्त्री पात्रों की सृष्टि की है–'चित्तकोबरा', 'उसके हिस्से की धूप' (उपन्यास), 'अवकाश', 'रुकावट', 'हरीबिन्दी' आदि कहानियों में, जो पति की अच्छाइयों के बावजूद परपुरुष की ओर गमन करती हैं वहाँ उन्होंने पारम्परिक सहनशील भारतीय पत्नियों की भी अपनी कहानियों में अवतारणा की है। प्रस्तुत कहानी की नायिका सरल कालरा ऐसी ही स्त्री है। स्त्री पुरुष सम्बन्धों की पीठिका पर निर्मित प्रस्तुत कहानी में कहानी की नायिका सरल कालरा अपने मन में व्यथा को छिपाए होने पर भी चेहरे पर प्रकट नहीं होने देना चाहती, वह अपने को सुन्दर और कम उम्र देखना चाहती है जबकि वास्तविकता यह है कि जिन्दगी से संघर्ष करते–करते वह थक गई है। भारत की पुरुषशासित समाज व्यवस्था में "सरल कालरा नौकरीपेशा महिला होते हुए भी पति की दुश्चरित्रता का शिकार होकर असमय ही बुढ़ा जाने को अभिशप्त

है।"[10] वह आत्मनिर्भर होने पर भी पति की शराबी वृत्ति के कारण परेशान है। उसे अपने असली चेहरे का पता तब चलता है जब प्रसिद्ध चित्रकार मणिपाल उसका सही चित्र उसके सामने रखता है। तब उसे आश्चर्य से देखती हुई वह सोचती है–"यह मैं हूँ या त्रासदी की प्रतिमूर्ति? यह चित्र क्या है टेढ़ी–मेढ़ी लकीरों से बना एक जाल और उसके भीतर से झांकती दो आंखें। आंसुओं से भीगी, यंत्रणाओं से बोझिल, संत्रास से विसफारित फिर भी उदासीन। काल के हाथों पिटी–हारी, एक दुःखी बुढ़िया की तस्वीर।"[11]

'लिली ऑफ द वैली' की नायिका निशि के समान ही मन में वेदना और व्यथा को छिपाए सरल कालरा को जब यथार्थ स्थिति का ज्ञान हो जाता है तो वह फूट–फूटकर रोने लगती है। उसे लगता है कि उसका कोई सहारा नहीं, अभाव ही अभाव है। आज उसका काम है, नौकरी है, तो जिन्दगी चल रही है पर कल क्या होगा? इस तरह स्थिति पर से परदा हट जाता है। "मृदुला गर्ग की 'यह मैं हूँ' हिप्पोक्रेसी के उदघाटन की दृष्टि से बेहतर है परन्तु प्रारम्भ में ही 'सरल' के चरित्र में ऐसा लगने लगता है कि यह तो है ही यही।"[12]

आज के दाम्पत्य जीवन में लक्षित इस विघटन के प्रमुख कई कारणों में से एक कारण यह भी है कि–"पति अपनी पत्नी की भावनाओं का आदर न करता हुआ महज उसे एक उपयोगी 'जिंस' 'कमॉडिटी' मानने लगता है।"[13] परिणामतः दाम्पत्य सम्बन्धों में उष्मा का अभाव, ठंडापन, शुष्कता तथा असामंजस्य दिखाई देता है। इन सब बातों की परिणति दो रूपों में होती है– एक तो सम्बन्धों को ढोते चले जाने वाले निर्वाह के रूप में दूसरे तलाक के रूप में।

लेखिका की 'वितृष्णा' कहानी में पति दिनेश और पत्नी शालिनी दोनों के वैवाहिक सम्बन्धों की चरमराहट अभिव्यक्त हुई है। दोनों भी अनचाहे सम्बन्धों का निर्वाह करने के लिए बाध्य हैं। यह वितृष्णा क्यों निर्माण हुई? इसका कारण है दिनेश की ऑफिस के कामों में अत्यधिक व्यस्तता। अपनी पत्नी शालिनी के लिए वह समय ही नहीं निकाल पाता। उसकी इस व्यस्तता से संवेदनशील शालिनी कुंठित हो जाती है। पति से उसे जिस चीज की चाहत थी वह पूरी नहीं हो पाती और उसमें पति के प्रति वितृष्णा निर्माण हो जाती है। दिनभर एक रूटीन में बंधकर, चौका चूल्हा संभालते उसका जीवन नीरस हो गया है। कई वर्षों से वह घर से बाहर तक नहीं निकली है। पति द्वारा न समझे जाने की एक अकूत और अनाम पीडा तथा वेदना उसमें है। शालिनी की इस मनोव्यथा को न समझने वाला दिनेश जब रिटायर्ड हो जाता है तब समझदार बनकर शालिनी का साहचर्य पाना चाहता है। रिटायर्ड दिनेश चाहता है कि शालिनी अब उससे जितनी चाहे उतनी बाते करें, अब उसके पास कोई काम नहीं पर इस बात को दिनेश कैसे समझे कि बातें करने का सही वक्त तो गुजर गया है। अब तो शालिनी केवल जड़ प्राणी और भावहीन संज्ञा बन चुकी है। अब शालिनी दिनेश से बदला लेना चाहती है। दिनेश दिन के डेढ़ बजे दोपहर तक घर के बाहर रहकर धूप में भी सड़कों पर घूमता, मोटर साइकिल थामें गुजार देता है और जब घर में लौटता है तो बिना किसी बातचीत के दरवाजा खोल दिया जाता है, चाहे तो वह खाना खा ले, या आराम कर लें। यह सब बिना कुछ बोले यंत्रवत सा हो जाता है। पत्नी का साहचर्य पाने के लिए आतुर दिनेश की यह कोशिश जारी रहती है कि शालिनी सिर ऊपर उठाकर चौंककर भरपूर नजर से उसे देखे। दिनेश उसके मौन को तोड़ने के लिए वहशी बनकर उसके कंधे दबोचना चाहता है परन्तु दोनों के बीच छाया सन्नाटा टूट ही नहीं पाता। "दिनेश सामने रहता है तो शालिनी का चेहरा, चेहरा नहीं रहता–सपाट पीठ बन जाता है।"[14] दोनों के बीच संवाद का जरिया उनका बेटा भी अमरीका जा बसा है। शालिनी अपनी बहन मंगला को भी दिनेश से बात नहीं करने देती। अपमानित दिनेश आधी रात क्लब में और आधी रात पार्क में बैठकर बिताता है। घर के सामने चिलचिलाती धूप में कमीज की बाँहों से पसीना पोंछते दिनेश को न पहचानकर और उसे एक मजदूर समझकर शालिनी फ्रीज में से ठंडे पानी की बोतल लाकर पिलाना चाहती है पर दिनेश को पहचानते ही उदास भाव से खिड़की का परदा खींचकर अपने कमरे में चली जाती है। बड़ी अजीब स्थिति है पति–पत्नी के बीच में। एक प्रकार का घोर मौन–संघर्ष।

कहानी पढ़कर पाठक अचंभित हो जाता है कि क्या पति–पत्नी के बीच ऐसी स्थिति भी संभव है? सत्यकाम कहते हैं–"कहानी यह सोचने को मजबूर करती है कि क्या समाज में पुरुष को ही जरूरी काम है, स्त्री केवल घर में घुटने के लिए हैं। अपने जरूरी काम की धौंस जमाकर पुरुष स्त्री की अपेक्षा अपने को श्रेष्ठ घोषित करने की कोशिश करता है। पर वह भूल जाता है कि पुरुष के प्रश्नों का समाधान स्त्री के पास है। पत्नी ही पति को अंत तक सहारा देती है। पर पुरुष अपने यौवनोन्माद में स्त्री के हृदय को कुंठित कर देता है, उसकी आत्मा को जड़ बना देता है। इसी यथार्थ का चित्रण इस कहानी में हुआ है।"[15]

मृदुला अपने उपन्यासों में एक निश्चित दर्शन के साथ स्त्रीत्व की केन्द्रीयता रचती हैं। हो सकता है इसे किसी प्रकार की कुण्ठा या हीनता–बोध की संज्ञा ऐसे आलोचक दें जो स्त्रीवाद के पूरे आंदोलन को ही हीनता–बोध की उपज मानते हैं। मृदुला इस मनोविज्ञान को सतत परास्त करने की भी कोशिश करती हैं। वे स्त्रीवाद से कथा उधार नहीं लेतीं न स्त्री को अवसर देने, महत्व देने, प्रतिष्ठा देने या उसकी अस्मिता देने की याचना करती हैं। वे स्त्रीत्व की शक्ति, क्षमता और सार्मथ्य से सब कुछ हासिल करने को अपनी कथा का निरूपण बनाती हैं। स्त्री भले ही क्षुब्ध, संत्रस्त, उत्पीड़ित और बँटी हुई हो, लेकिन वह अपने आंतरिक विप्लव को स्वयं रचती है और आजमाती है। उसका अपना कोई विद्रूप नहीं, न पति, न परिवार, न प्रेमी और न पुरुष–वर्चस्व में वह जीतकर उनके विरुद्ध विद्रोह करती है, न व्यथा से व्याकुल होकर चीत्कार करती है। वह तो अपने समूचे दैहिक और बौद्धिक पराक्रम के साथ प्रकट होकर पुरुष के समक्ष इस प्रकार खड़ी है कि वहाँ उसे पुरुष की छाया या माया में देखने के बजाय एक समग्र, सम्पूर्ण और समर्थ मानवीय उपस्थित में देखना होता है। 'कठगुलाब' की चार केन्द्रीय स्त्री पात्र अपना–अपना कथावाचन, अपनी पीड़ा, व्यथा, विद्रोह और टकराव के साथ करती हैं, लेकिन अपने हर विक्षोभ, अपनी हर बेचैनी और अपनी हर क्रिया का उत्तर स्वयं खोजती हैं।

यदि मृदुला के उपन्यासों को रखकर देखा जाए तो वे यथार्थों की उपन्यासकार तो अवश्य हैं लेकिन प्रतिबद्धता का कोई जड़ व्यवहार नहीं अपनाती। वे स्त्रीवाद को मानती हैं, स्त्री की अस्मिता के लिए लिखती भी हैं, लेकिन उसे अपने ही विचार और दर्शन की प्रतिबद्धता के साथ न कि किसी के प्रभाव या अनुकरण से। स्त्री उनका एक स्वाभाविक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और दार्शनिक पक्ष है, उसे ही वे केन्द्र की तरह रचती हैं, केन्द्र की तरह खोजती हैं और उसके केन्द्र में ही कथा के समस्त इतर स्रोत और सत्वों को समाहित कर देती हैं। 'कठगुलाब' के चारों स्त्री कथा–वाचक और एक पुरुष मृदुला के स्त्री–केन्द्र को मिटा नहीं पाते बल्कि अपने–अपने केन्द्र का संरक्षण स्वयं करते हैं। पुरुष के साथ रह कर, उसे सह कर और उसे त्याग कर भी और उससे विद्रोह करके भी। मृदुला अपने उपन्यासों में स्त्री–व्यथा को करुणा, दया या निर्भरता में परास्त नहीं होने देती बल्कि व्यथा और वासना दोनों के अन्दर से अपनी–अपनी शर्त पर विद्रोह रचती हैं और यह विद्रोह स्त्री के अपने होने, रहने, जीने की अस्मिता का विद्रोह है

और उसकी उपस्थिति के अहसास का विद्रोह है।

'कठगुलाब' में जारविस और स्मिता का यह संवाद इस अहसास का एक अच्छा उदाहरण है – जरूरी नहीं कि तुम अभी जवाब दो। ज़रूरी नहीं कि तुम मुझे जवाब दो। पर हद से अपने को मत छिपाओ। पूरा खोल दो। डरो मत... मैं अन्य पुरुष नहीं हूँ। मैं तुम्हारी प्रतिमूर्ति हूँ (पृष्ठ 39)। मृदुला 'मारियान' में औरत होने न होने का जो द्वंद्व रचती हैं, उससे भी यह स्पष्ट है कि उनका स्त्री–सचेतन कितना बेचैन है – औरत होना विडंबना को जन्म देता है, उसके मन में बजा। नहीं औरत होना एक विडंबना है। नहीं, औरत खुद एक विडंबना है। जहाँ औरत होगी, विडंबना जन्म लेगी। औरत तेरा नाम विडंबना है। इस विडंबना में छिपी स्त्री को मृदुला नर्मदा में इस प्रकार बाहर लाती हैं–कमबख्त तू क्या सोचे है, तू अकेली मरदमार है, हमें किसी मरद ने ना कहा या हमने कभी किसी आदम–जात को भरतार ना माना। 'असीमा' इन दोनों से और आगे बढ़ती है और ऐसा लगता है कि यहाँ मृदुला अपने स्त्री–बोध में पुरुष के विरुद्ध एक प्रकार के आक्रोश से ग्रस्त हैं–मर्दों को देखते ही उन्हें पीटने का मन करता था। ना–ना, एकदम लात–घूँसों से करने की बात नहीं कर रही। पर उनके दिलो–दिमाग पर चोट करने और निशान छोड़ने का मन जठर करता था (पृष्ठ 179)। छला के उपन्यास मर्दों के मन पर चोट करने और निशान छोड़ने के उपन्यास हैं और इसलिए वे अपनी प्रमुखता या मुखरता में स्त्री–पक्ष के उपन्यास ही हैं। मृदुला चाहे किसी स्त्रीवाद या फेमिनिज़्म को न मानें लेकिन उनका स्त्री–पक्ष अपना है और इसलिए वह एक प्रकार से उनका अपना रचा हुआ स्त्रीवाद ही है। 'विपिन' के कथावाचन में मृदुला का स्त्रीवाद या स्त्री पक्ष अत्यंत मुखर होने के साथ, पुरुष द्वारा स्त्री–वर्चस्व या स्त्री–व्यक्तित्व की स्वीकृति भी है और स्त्रीत्व से जुड़े निर्मम सत्य का उद्‌घाटन भी–देखिए तो असीमा शक्ति का प्रभाव! स्वभाव और सरकार में फर्क करना मैं कभी नहीं भूलता। धीरे–धीरे सत्कार स्वभाव बन जाता है सच, इतिहास हमें कितना निरुपाय बना देता है (पृष्ठ 22)। भारतीय परंपरा में तो हमेशा तेजस्वी स्त्रियाँ और विज्ञ–पुरुष श्राप देते आए थे (213)। उच्च जाति के भारतीय पुरुष से ज्यादा संवेदन–शून्य इंसान पूरी दुनिया में ढूँढे नहीं मिलेगा। लहुसन की खेती ... औरतों का काम ... बच्चे स्कूल, बंजर जमीन पर कठगुलाब की झाड़ी उगेगी पर विपिन को उसके नीचे फैला बंजर ही दिखेगा।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः मैं यह कह सकती हूँ कि 'कठगुलाब' उपन्यास में मृदुला जी मान्यताओं और परंपराओं से उपजे संस्थानों को ढहा देती हैं और तेजस्वी स्त्री हो या विज्ञ पुरुष–दोनों के श्राप में मनुष्यता के हनन का उजागर कर देती है। 'चित्तकोबरा' की मनु हो या 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा या 'मैं और मैं' की माधवी, ये सब जब तक कथा में पात्र हैं, भौतिक–वस्तु हैं; लेकिन जब ये विचार होता है तो स्त्री हो जाती हैं, स्त्री में भी एक ऐसा स्त्रीत्व जो विचार की अस्मिता है और जो अपना केन्द्र स्वयं रचती है और अन्यों द्वारा रचित केन्द्रों को ध्वस्त भी करती है।

सन्दर्भ

1. समीक्षा, मई–जून 1976, 'उसके हिस्से की धूप', गोविन्द रजनीश के लेख, पृष्ठ 27.
2. समीक्षा, अक्टूबर–दिसम्बर 1980, 'चित्तकोबरा', शैलेश्वर सतीप्रसाद के लेख से, पृष्ठ 70.
3. समीक्षा, अप्रैल–जून 1999, सम्बन्धों की विषम स्थितियाँ और नए समीकरण, वीरेन्द्र सक्सेना के लेख से, पृष्ठ 22.
4. कठगुलाब, पृष्ठ 220, मृदुला गर्ग.
5. कठगुलाब, पृष्ठ 226, मृदुला गर्ग.
6. दस्तावेज, जुलाई–सितम्बर 1999, सत्यदेव त्रिपाठी 'कठगुलाब', पृष्ठ 55.
7. समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ, पृष्ठ 161, डॉ. पुष्पपाल सिंह.
8. चुकते नहीं सवाल–'कहानी में स्त्री चेतना', मृदुला गर्ग के लेख से, पृष्ठ 53.
9. चर्चित महिला कथाकारों की कहानियाँ–भूमिका, पृष्ठ 7, संपादक दिनेश द्विवेदी.
10. सारिका, जनवरी 1979, मधुरेश के लेख–'स्त्री पुरुष सम्बन्धों वाली दुनिया', पृष्ठ 71.
11. टुकड़ा–टुकड़ा आदमी, पृष्ठ 100, मृदुला गर्ग.
12. समकालीन कहानी रचना और दृष्टि, संपादक सेठ तथा मेहरोत्रा अन्तर्गत सतक्यप्रकाश मिश्र के लेख–'सीमित दुनिया की सीमित चर्चा' से, पृष्ठ 155.
13. भाषा, सितम्बर 1987 अन्तर्गत डॉ. पुष्पपाल सिंह के लेख–'आधुनिक हिन्दी कहानी : दाम्पत्य सम्बन्ध' से, पृष्ठ 51.
14. उर्फ सैम, पृष्ठ 26, मृदुला गर्ग.
15. समीक्षा, जनवरी–मार्च 1987, 'उर्फ सैम' सत्य काम, पृष्ठ 32.